वैज्ञानिक शोध के प्रभाव की नपाई का प्रभाव

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

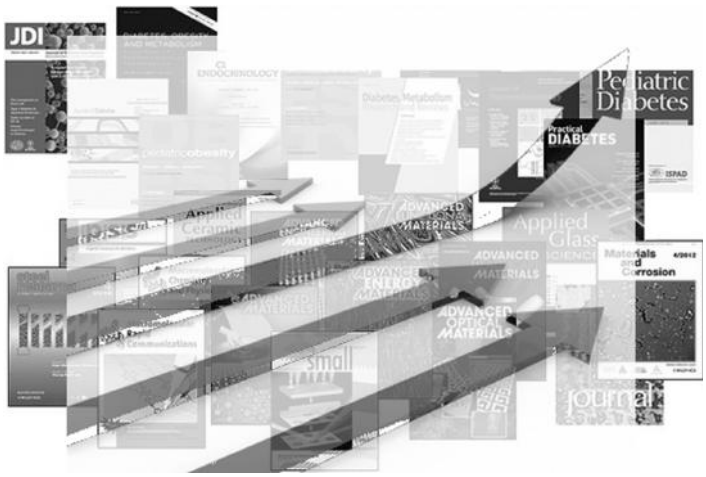

आम पाठकों, यानी जिन लोगों का पेशा विज्ञान नहीं है, को शायद पता नहीं होगा कि हम वैज्ञानिक स्वयं अपने कामकाज के आकलन के लिए एक मापदंड का उपयोग करते हैं। इसे आप चाहें तो टेनिस खिलाड़ियों की एटीपी रेटिंग या टीवी चैनलों की टीआरपी रेटिंग जैसा मान सकते हैं। विज्ञान में प्रदर्शन के मापदंड को इम्पैक्ट फैक्टर यानी प्रभाव गुणांक कहते हैं। संक्षेप में आईएफ कह सकते हैं।

इसकी शुरुआत इसलिए हुई थी ताकि लायब्रेरियन को यह समझने में मदद मिले कि कौन-सी शोध पत्रिकाएं अन्य के मुकाबले ज़्यादा पढ़ी जाती हैं ताकि वे पत्रिकाओं की ग्राहकी सम्बंधी निर्णय कर सकें। मगर समय के साथ यह व्यवस्था बदलती गई और एक-एक वैज्ञानिक के काम का आकलन करने के लिए उपयोग की जाने लगी। हाल के वर्षों में वैज्ञानिक संस्थाओं ने इस बदलाव की काफी आलोचना की है और अब प्रयास हो रहे हैं कि इसे दुरुस्त किया जाए। पहले यह देखते हैं कि यह बदलाव हुआ कैसे।

करीब 40 साल पहले शोध पत्रिकाओं के प्रकाशकों और लायब्रेरियन्स ने एक सूत्र विकसित किया था जिसकी मदद से वे यह पता लगा सकते थे कि कौन-सी पत्रिकाएं अन्य की तुलना में ज़्यादा पढ़ी जाती हैं। इसे करने का एक तरीका यह था - किसी शोध पत्रिका (मान लीजिए 'जे' नामक शोध पत्रिका) में पिछले दो सालों में कोई शोध पत्र प्रकाशित हुआ। अब आप यह देखिए कि पिछले साल उस शोध पत्र का उल्लेख कितने वैज्ञानिकों ने अपने-अपने शोध पत्र में किया है। ज़ाहिर है, ज़्यादा महत्त्वपूर्ण शोध पत्र का उल्लेख उसी विषय से सम्बंधित अन्य शोध पत्रों में ज़्यादा बार होगा। इसे आप मात्रात्मक रूप दे सकते हैं। मान लीजिए 'जे' शोध पत्रिका में प्रकाशित कुल शोध पत्रों को X मर्तबा अन्य शोध पत्रों में उल्लेखित किया गया। ध्यान देने की बात यह है कि उस शोध पत्रिका ('जे') में सिर्फ वही एक शोध पत्र तो प्रकाशित नहीं हुआ होगा। मान लीजिए कि 'जे' में कुल Y शोध पत्र प्रकाशित हुए थे। तो 'जे' का इम्पैक्ट फैक्टर हुआ X/Y। जितना अधिक इम्पैक्ट फैक्टर, उतना ही वह शोध पत्रिका प्रभावी मानी जाएगी।

यहां एक रोचक बात पर ध्यान दीजिए। कुल प्रकाशित Y शोध पत्रों में से किस शोध पत्र का उल्लेख इतनी अधिक बार हुआ? क्या वह मेरा शोध पत्र था? यदि ऐसा है, तो मैं अपने काम पर गर्व कर सकता हूं कि इसका कुछ महत्त्व तो रहा। यदि वह शोध पत्र मेरा नहीं था, तो मैं एक पुछल्ले की तरह उस इम्पैक्ट फैक्टर की गाड़ी में सवार हूं। किसी शोध पत्रिका का इम्पैक्ट फैक्टर उसमें प्रकाशित अलग-अलग शोध पत्रों के बारे में कुछ नहीं बताता। इम्पैक्ट फैक्टर तो एक औसत मान है। मगर कालांतर में हम वैज्ञानिक ऐसी बातें करने लगे कि "मेरा शोध पत्र 'जे' शोध पत्रिका में छपा है, जिसका इम्पैक्ट फैक्टर बहुत अधिक (6

या 30 या कुछ भी) है।" सवाल यह है कि यह इम्पैक्ट फैक्टर मेरा है या उस शोध पत्रिका का?

और तो और, अकादमियां तथा पुरस्कारों, पदोन्नतियों और भर्तियों का निर्णय करने वाली समितियां भी इम्पैक्ट फैक्टर का इस्तेमाल वैज्ञानिक के महत्त्व का आकलन करने के लिए करती रही हैं। ऐसा नहीं है कि हमें इस गड़बड़ी का भान शुरू से नहीं था। आंकड़ों को देखकर निर्णय करना आसान होता है और आप मेहनत से बच जाते हैं। ये निर्णयकर्ता इतने आलसी या व्यस्त होते हैं कि उम्मीदवार का वास्तविक शोध पत्र पढ़ने की ज़हमत नहीं उठाते। उनका काम तो इम्पैक्ट फैक्टर से ही चल जाता है। इस गड़बड़ी की ओर बार-बार ध्यान आकर्षित किया गया है। मेरे एक सहकर्मी डॉ. गौरीशंकर ने मुझे एक बार बताया था कि आप अपने शोध पत्र के उल्लेखों की संख्या को कैसे कृत्रिम रूप से बढ़ा सकते हैं। एक अन्य सहकर्मी ने बताया था कि कई बार किसी शोध पत्र का उल्लेख इसलिए नहीं होता कि वह उस क्षेत्र में तरक्की का द्योतक है बल्कि इसलिए होता है कि वह गलत है और लोग एक-दूसरे को यह बात बताने के लिए उसका उल्लेख करते हैं।

इस गड़बड़ी की एक ज़ोरदार आलोचना *जिनेटिक्स* नामक शोध पत्रिका के मुख्य संपादक डॉ. मार्क जॉनस्टन ने अपनी पत्रिका के अगस्त 2013 के अंक में की है। वे कहते हैं कि इसमें पूरा दोष हम वैज्ञानिकों का है, "यदि हम ऊंचे इम्पैक्ट फैक्टर वाली शोध पत्रिकाओं को इतना महत्त्व न दें, तो हमारे जूनियर सहकर्मी इम्पैक्ट फैक्टर पर इतना ध्यान नहीं देंगे।" और इस संदर्भ में उन्होंने पोगो कार्टून स्ट्रिप का वह मशहूर वक्तव्य दोहराया है, "हमें दुश्मन मिल गया है, और वह हम खुद हैं।"

प्रोफेसर जॉनस्टन का संपादकीय सैन फ्रांसिस्को अनुसंधान आकलन घोषणा पत्र के आधार पर लिखा गया है। यह घोषणा पत्र कुछ शोध पत्रिकाओं के संपादकों और प्रकाशकों ने दिसंबर 2012 में तैयार किया था। यह घोषणा पत्र http://am.ascb.org/dora/ पर उपलब्ध है और अत्यंत पठनीय है। इसमें शोध पत्रिका आधारित मापन से छुटकारा पाने की ज़ोरदार वकालत की गई है, खास तौर से फंडिंग, पदोन्नति और नव नियुक्तियों के संदर्भ में। इसमें कहा गया है कि प्रत्येक शोध पत्र को उसकी अपनी गुणवत्ता के आधार पर परखा जाना चाहिए, न कि इस आधार पर कि वह किस शोध पत्रिका में प्रकाशित हुआ है। घोषणा पत्र में प्रकाशकों से आव्हान किया गया है कि वे इम्पैक्ट फैक्टर का उपयोग अपने प्रचार-प्रसार या विज्ञापन के रूप न करें। इस घोषणा पत्र का अनुमोदन दुनिया भर के 78 संगठनों और अनुदान संस्थाओं ने किया है (मगर इनमें भारत से एक भी नहीं है)।

भारत की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए बनारस हिंदू विश्वविद्यालय के प्रोफेसर सुभाष लखोटिया ने करंट साइन्स के 10 अगस्त 2013 के अंक में लिखा है कि इम्पैक्ट फैक्टर के प्रति इस अप्राकृतिक रुझान ने भारतीय शोध पत्रिकाओं की लुटिया डुबो दी है। "इम्पैक्ट फैक्टर से लैस विशेषज्ञ 'अच्छे' और 'घटिया' के बीच तुरंत विभाजन कर देते हैं।" लखोटिया का कहना सही है। भारत में पुरस्कार समितियां और पदोन्नति समितियां उम्मीदवारों से कहती हैं कि वे 'भारतीय' और 'अंतर्राष्ट्रीय' शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित अपने शोध पत्रों को अलग-अलग दर्शाएं। इसका उपयोग निर्णय के एक मापदंड के रूप में किया जाता है। एक बार फिर, दुश्मन हम ही तो हैं।

सवाल यह है कि फिर किसी वैज्ञानिक के कामकाज और उसके अनुसंधान कार्य के प्रभाव को कैसे नापा जाए? इसके लिए यह देखा जा सकता है कि उसके अपने शोध पत्रों का उल्लेख कितने अन्य शोधकर्ता अपने शोध पत्रों में करते हैं। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जोर्ग हर्श ने इस तरीके का उपयोग करके एक 'एच' सूचकांक विकसित किया है। यह इम्पैक्ट फैक्टर से कहीं बेहतर है क्योंकि यह पूरी शोध पत्रिका का नहीं बल्कि एक-एक शोध पत्र का मूल्यांकन करता है। अलबत्ता, वह एक अलग कहानी है। ***(स्रोत फीचर्स)***